



राजस्थान के आदिवासी आन्दोलन और हिन्दी उपन्यास

आदिवासी जीवन, संस्कृति और उनकी समस्याओं पर तो उपन्यास लिखे गए हैं और लिखे जा रहे हैं। लेकिन जब उनके ऐतिहासिक पक्ष की बात आती है तो हमारे सम्मुख गिने-चुने उपन्यास ही आते हैं। जिनमें मधुकर सिंह का 'बाजत अनहद ढोल', राकेश कुमार सिंह के 'जो इतिहास में नहीं है' तथा 'हुल पहाड़िया', हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर' और राजेन्द्र मोहन भटनागर का 'मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरी' हैं। इनमें आरंभिक दो उपन्यास 'संथाल हूल' (1855) की पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं। जिसमें सिदो, कान्हू, चाँद और भैरव की अगुवाई में किए गए संघर्ष हैं। इन चारों भाईयों ने 1855 ई. में आदिवासियों को संगठित कर शोषणकारी अंग्रेजी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई थी। उन्हीं संघर्षों को केंद्र में रख कर इन्हें लिखा गया है। हुल पहाड़िया में 'पहाड़िया संघर्ष' (1781) को रेखांकित किया गया है। 1781 ई. में तिलका माँझी ने अंग्रेजों की 'फूट डालो' शासन नीति को पहचान लिया था तथा अपने अस्मिता और अस्तित्व को बचाए रखने के लिए अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों के खिलाफ संघर्ष किया था। उन्हीं संघर्षों पर यह उपन्यास केन्द्रित है। यह सभी संघर्ष 1857 से पहले किये गए थे, फिर भी इनकी तरफ इतना ध्यान नहीं दिया गया। यह कृत्तियाँ आदिवासियों के बलिदान की कहानी बयान करती है।

उक्त में से अंतिम दो उपन्यास राजस्थान में मानगढ़ की पहाड़ी पर घटित घटना पर केन्द्रित हैं। इस घटना में मगरी मानगढ़ की पहाड़ियों को तीनों ओर से घेरकर आदिवासियों को मार दिया गया था, जिसमें लगभग पन्द्रह सौ आदिवासी मारे गए थे। इस पहलू को यह दोनों उपन्यास उजागर करते हैं। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी आदिवासी जीवन केन्द्रित ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए हैं। जिनमें महाश्वेता देवी ने 'जंगल के दावेदार', 'चेटिमुण्डा व उसके तीर' (बंगला), गोपीनाथ महांती का 'अमृत सन्तान' (ओडिसा), वीरेंद्र भट्टाचार्य का 'मृत्युंजय' (असमिया) और बाबा भाण्ड का 'टंट्या' (मराठी) आदि उल्लेखनीय हैं।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास

हरिराम मीणा का उपन्यास 'धूणी तपे तीर' (2008) दक्षिण राजस्थान के मानगढ़ में अंग्रेजों द्वारा किये गए आदिवासियों के नरसंहार की कहानी बयान करता है। इसके केंद्र में वागड़, उदयपुर, डूंगरपुर, कुशलगढ़, रतलाम, सैलाना, झाबुआ और सुंधारामपुर इत्यादि आदिवासी क्षेत्रों में गोविन्द गुरु द्वारा किये गये जागृति के कार्य हैं। उनका जन्म डूंगरपुर रियासत के बासिया गाँव के बंजारा परिवार में हुआ था। उनके माता-पिता का नाम क्रमशः लाटकी और बेसरा था। उन्होंने अपनी आरम्भिक शिक्षा राजगिरी गोसाई से ग्रहण की, जो गाँव के मन्दिर में पुजारी थे। वे गाँव-गाँव घूमकर आदिवासियों के बीच भजन-कीर्तन के माध्यम से अच्छाई-बुराई का फर्क बताते थे। आदिवासियों में नैतिक उत्थान के माध्यम से जागृति फैलाना चाहते थे।

गोविन्द गिरि की दिन-प्रतिदिन ख्याति बढ़ती जा रही थी जिससे महारवालों में बैचेनी थी। डूंगरपुर के महारावलों ने पोलिटिकल रेजिडेंट से कहा कि आदिवासी विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं अगर कुछ नहीं किया गया तो भील स्वतंत्र राज्य की स्थापना हो सकती है। मानगढ़ की पहाड़ी पर मेला की तारीख 17 नवम्बर

थी। गोविन्द गुरु ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि तिथि से पहले ही स्त्रियाँ और बच्चे धूनी स्थल पर पहुँच जाएँ। उस दिन मानगढ़ पर भीड़ ही भीड़ थी। अंग्रेजी पलटन ने योजना के तहत मगरी मानगढ़ को तीनों तरफ से घेर लिया था। जिस ओर खाई थी उस स्थान को खाली छोड़ दिया गया था। पूंजा गोविन्द को अंग्रेजी कार्यवाही की जानकारी देता है तो वे बुजुर्गों, औरतों और बच्चों को उत्तर दिशा की ओर जाने के लिए कहते हैं।

स्टोकले और कैप्टन पीटरसन विचार-विमर्श करते हैं कि आदिवासी लोग गोविन्द को चमत्कारी बाबा मानते हैं। इतने में स्टोकले ने अपनी सैन्य टुकड़ियों को फायर का आदेश दे दिया था। तीनों ओर से गोलियों की बौछारें शुरू हो गई थी। भगत एक-एक कर मरने लगे थे। सम्प-सभा के रक्षा दल के सदस्यों ने उनका मुकाबला किया लेकिन पत्थरों की ओट में छिपे फौजियों का कुछ भी हताहत नहीं हुआ बल्कि रक्षा दल के सदस्य काल के गाल में समा गए। कुछ आदिवासी स्त्रियाँ ने हाथों में कुल्हाड़ी व पत्थर लेकर सैनिकों की ओर लपकी लेकिन उनकी सांसे भी गोलियों ने थाम ली थी। लोग अपनी जान बचाने के लिए दक्षिण-पश्चिम में कुंडा की गहरी खाई में उतरने लगे लेकिन वहाँ से पैर फिसल जाने के कारण काफी लोग उसमें गिरकर मर गए। भीषण नरसंहार के बाद गोविन्द गुरु के साथ पूंजा तथा अन्य भगतों को गिरफ्तार किया गया था। इस नरसंहार में लगभग 1500 सौ आदिवासियों को मार दिया गया था।

गोविन्द गुरु का व्यक्तित्व

गोविन्द गुरु ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। उपन्यास में उनके जन्म के बारे में तो बताया गया है लेकिन तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। रमेश चन्द्र वडेरा उनके जन्म और तिथि के बारे में लिखते हैं- “वर्तमान राजस्थान के डूंगरपुर नगर से 23 मील दूर स्थित बांसीया गांव में गोविन्द गुरु का जन्म 20 दिसम्बर, 1858 को एक बंजारा परिवार में हुआ।”¹ शिवतोष दास² का मत भी यही है। हरिराम मीणा ठीक कहते हैं कि उनका जन्म बासिया गाँव में हुआ था। लेकिन उनके जन्म की तिथि नहीं बताते जबकि रमेशचन्द्र और अन्य संदर्भों से पता चलता है कि उनके जन्म की तिथि 20 दिसम्बर 1858 थी।

दक्षिण राजपूताने में आदिवासियों की स्थिति

राजस्थान में सन् 1898 में छप्पन्या का अकाल पड़ा था। इस दौरान दक्षिणी राजपूताना की पाँचों रियासतों अर्थात् मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, कुशलगढ़ व प्रतापगढ़ इलाकों में भारी संख्या में आदिवासियों की मौत हुई। उपन्यास में लिखा है कि- “सन् 1891 में इस क्षेत्र के आदिवासियों की संख्या 6,12,459 आंकी गई थी जो सन् 1901 में 2,72,708 तक गिरी। इस तरह करीब 55 प्रतिशत आदिवासी आबादी अकाल का ग्रास बन गयी।”³ इससे पता चलता है कि आदिवासियों की इतनी भयावह स्थिति होने के बाद भी उनके ऊपर राज करने वाले राजाओं ने उनकी अनदेखी की थी। जिस कारण से उनके भीतर आक्रोश उभर रहा था।

सम्प सभा के कार्य

गोविन्द गुरु आदिवासियों को जागरूक करने चाहते थे। इसीलिए उन्होंने पूंजा धीरा के साथ मिलकर ‘संप सभा’ का गठन किया था। ताकि आदिवासियों को शिक्षित करने के साथ-साथ इनके बीच मौजूद समस्याओं का समाधान किया जा सके। उनके बीच की बुराईयों को समाप्त कर उनके अधिकारों के प्रति उन्हें समझा सके। इस सन्दर्भ में रमेश चन्द्र वडेरा लिखते हैं- “गोविन्द गुरु की ‘संपम’ सभा के आर्थिक-सामाजिक आंदोलन में शराब, चोरी-डकैती, लूटमार बन्द करना एवम् खेत-मज़दूरी कर पेट पालना

भी शामिल था । वे गांव-गांव में पाठशाला खोलकर बच्चों और बड़ों को शिक्षित करने के लिए भी प्रचार करते थे । अदालतों में झगड़े ले जाने की बजाय उन्होंने ग्रामीणों को गांव में ही विवाद मिटाने के लिए प्रेरित किया ।”⁴ इस संगठन में सम्मिलित होने की वजह से आदिवासियों का नैतिक उत्थान होने लगा था और वह अपनी बुरी आदतें छोड़ने लगे थे-“बांसवाड़ा रियासत में तीन वर्ष पूर्व 18,470 गेलन ठेका शराब की खपत हुई थी जो वर्ष 1913 में इस समय तक मात्र 5154 गेलन रह गयी थी ।”⁵ इसका प्रभाव सीधे कंपनी के खजाने पर पड़ रहा था । इसका प्रभाव ठेकेदारों, महारावलों के राजकोष पर पड़ रहा था । क्योंकि उन्हें एक निश्चित राशि कंपनी सरकार को देनी पड़ती थी । ऐसी स्थिति में उनको बराबर यह डर भी रहता था कि कहीं गोविन्द गिरी द्वारा उनके राज्यों को हड़पने तथा भील राज्य की स्थापना की नींव तो नहीं रखी जा रही ।

अंग्रेजों द्वारा मानगढ़ पहाड़ी पर किया नरसंहार

सूथ के महारावल ने गोधरा व अहमदाबाद के अंग्रेज कमिश्नरों को तार भेजा कि उसके किले के बाहर हजारों आदिवासी एकत्रित हैं, जल्दी मदद भेजी जाए । महु डिविजन के जनरल अफसरों ने 6 नवम्बर 1913 को चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ को सूचना भेजी कि सूथ रियासत के आदिवासी नियन्त्रण से बाहर हो गए हैं । उन्होंने राज के खिलाफ बगावत का ऐलान कर दिया है । रमेश चन्द्र वडेरा लिखते हैं- “डूंगरपुर, बांसवाड़ा व कुशलगढ़ के राजाओं ने अंग्रेजी रेजीडेन्ट के पास लिखित शिकायतें भेजीं कि लोग संगठित होकर स्वंत्रत भील राज्य की स्थापना करना चाहते हैं और उसके लिए भारी तैयारियां कर रहे हैं । शिकायत के साथ ही इन रियासतों से भीलों के विद्रोह को दबाने के लिए सैनिक सहायता मांगी ।”⁶ इसके बाद 17 नवम्बर 1913 को मानगढ़ की पहाड़ी पर नरसंहार किया गया था । अंग्रेजी पल्टन ने स्टोकले और कैप्टन पीटरसन के कहने पर लगभग पन्द्रह सौ आदिवासियों को मार दिया था । इस सन्दर्भ में रमेश चन्द्र वडेरा लिखते हैं- “इस नरसंहार का कोई सही-सही रिकार्ड नहीं मिलता । अनुमान है कि इस राक्षसी नरसंहार में 1500 भील मारे गए ।”⁷ यह सोचने के लिए विवश करता है कि भगती जैसे कार्यों के लिए जुटे लोगों पर पूरी योजना के तहत हमला कर दिया जाता है । इस हमले में निर्दोष लोग मारे जाते हैं । जबकि अंग्रेजी पल्टन के पास उस समय इतने सैनिक और अस्त्र-शस्त्र थे कि वह उन लोगों को कैद करके भी भगती कार्य को रुकवा सकते थे । लेकिन उनकी मंशा तो नरसंहार करना था । उनके लिए आदिवासी इंसान थोड़े थे । वह तो उन्हें जंगली समझते थे । इसलिए तो उन्होंने आदिवासियों से बात करना उचित न समझकर सीधे गोलियों से भुन दिया था ।

ये अमानवीय व्यवहार उन लोगों ने किया था जो अपने आप को सभ्य जाति मानती थी । दुनिया को सभ्यता और संस्कृति का पाठ पढ़ाती थी । अन्य धर्मों के लोगों को ईसाई धर्म में सम्मिलित होने की शिक्षा देकर स्वच्छ समाज के निर्माण की बात करते थे । यह इस बात को सोचने के लिए मजबूर करता है कि क्या हिंसा के माध्यम से ही किसी पर अधिकार किया जा सकता है ? अगर हाँ तो हमें गाँधी द्वारा अर्जित की गई स्वतन्त्रता को झुठलाना होगा । क्या जिस अहिंसा पर चलकर गोविन्द गुरु आदिवासियों को सभ्य और उनका उत्थान करना चाहते थे, क्या वह गाँधी का मार्ग नहीं था । दूर्भाग्य की बात तो यह है कि भारत के देशी राजाओं ने भी उनकी शक्ति के साथ अपनी शक्ति को सम्मिलित कर उन लोगों के दमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी ।

धूणी तपे तीर उपन्यास की कुछ सीमाएँ भी हैं । गोविन्द द्वारा किये गए जागृति के कार्यों में स्त्रियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही थी । जिस समय अंग्रेजों द्वारा नरसंहार हो रहा था, उस समय स्त्रियाँ भी कंपनी की पल्टन से लोहा ले रही थी । लेकिन उपन्यासकार इस कृति के अंत में उनके बलिदान को

संक्षेप में बताकर निकल जाते हैं। निसंदेह दयानंद सरस्वती के विचारों का प्रभाव गोविन्द गिरी पर पड़ा था वे उनसे मुलाकात भी करते हैं। लेकिन इसमें बड़ी सफाई से उनकी भूमिका को संक्षेप में बताकर उपन्यासकार निकल जाते हैं। इसके साथ ही प्रकृति चित्रण ऐसे किया गया है जैसे छायावादी युग के कवि सुमित्रानंदन पंत ने अपनी कविताओं में किया है। किसी पात्र को दिखाने के लिए उसकी शारीरिक विशेषता रचनाकार ऐसे बताते हैं जैसे यह उपन्यास ऐतिहासिक न होकर प्रकृति और व्यक्ति की विशेषताओं का बखान कर रहा हो।

धूणी तपे तीर उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। धूण अर्थात् ऐसा स्थल जहाँ हवन कुंड में अग्नि को होम दिया जाता है उस होम से निकले धुँ से वातावरण शुद्ध होता है। उसी प्रकार इस धूणी में भगतों ने नारियल, घी के साथ मन की बुराईयों को निकाल आत्मा की शुद्धता को ग्रहण किया था। निसंदेह हरिराम मीणा ने इतिहास के पन्नों में उपेक्षित घटना को अपनी इस रचना के माध्यम से समाज को रूबरू कराया। जलियांवाला बाग जैसा नरसंहार हो गया और हमारे इतिहासकार इतने समय तक चुप रहे, यह कृति इस बात को उकेरती है। आदिवासियों के संघर्षों के साथ यह उपन्यास उनके बलिदान को प्रस्तुत करता है। इसे हिंदी के आदिवासी ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

‘मगरी मानगढ गोविन्द गिरी’ उपन्यास

राजेन्द्र मोहन भटनागर का उपन्यास ‘मगरी मानगढ गोविन्द गिरी’ (2011) ‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास की अगली कड़ी लगता है। इसका मुख्य विषय भी राजस्थान में गोविन्द गिरी द्वारा आदिवासी समुदाय में किये गए जागृति के कार्य हैं। इस उपन्यास में गोविन्द गिरी के माता-पिता के नाम क्रमशः सावंती और गणेश्य बताया गया है। लेकिन हरिराम मीणा ‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास में उनके माता पिता का नाम लाटकी और बेसरा बताते हैं। राजेन्द्र मोहन इसकी भूमिका में लिखते हैं कि-“एक लम्बे समय से करीब, 72 से मैं मेवाड़; बागड़ आदि के इतिहास के पृष्ठों को पलट रहा हूँ। बहुत कुछ इतिहास में नहीं हैं, वह लोक में है।”⁸ उनके माता-पिता के नामों को लेकर दोनों उपन्यासों में विरोधाभास नजर आता है। लेकिन समाज में व्यक्तियों के दो नाम होना कोई बड़ी बात नहीं है। इसी कारण से इन दोनों कृतियों में अलग-अलग नाम नजर आते हैं। जो रचनाकारों ने अपने तथ्यों के अनुरूप इन नामों को गृहण किया है। इस उपन्यास में मौजूद मुद्दों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

गोविन्द गुरु और सम्प सभा

इसमें भी सम्प सभा का उद्देश्य वही है धूणी तपे तीर उपन्यास में है अर्थात् आदिवासियों के बीच जाकर उनके नैतिक उत्थान के माध्यम से उनको उनकी समस्याओं से अवगत कराते हुए विकास की ओर अग्रसर करना था। उन्होंने अपने कार्यों की पूर्ति के लिए आदिवासियों के बीच ‘संप सभा’ का गठन किया था। ताकि आदिवासी समुदाय अपनी सामाजिक बुराईयों को त्यागकर विकास की ओर अग्रसर हो सके। लेकिन रचनाकार सभा के गठन की तिथि नहीं बताते हैं। इस सन्दर्भ में रमेश चंद मीणा लिखते हैं- “आदिवासियों में चेतना फैलाने के लिए ‘सम्प-सभा’ का गठन 1883 में कर लिया जाता है। सामाजिक बुराईयों, धार्मिक अंधविश्वासों मुक्ति दिलाने वाले गुरु को क्षेत्र के आदिवासी आज भी याद करते हैं।”⁹

मानगढ़ की पहाड़ी पर घटित नरसंहार

गोविन्द गुरु का ने मानगढ़ की पहाड़ी पर सात दिसंबर 1908 को विशाल आयोजन करने की योजना बनाई थी, जिसमें हजारों आदिवासी वहाँ पर एकत्रित होने वाले थे। इस आयोजन को रोकने के लिए कैप्टन स्टोकले के साथ राजपूत, जाट रेजिमेंट, मेवाड़ भील कोर और खेरवाड़ा की कंपनिया थी। स्टोकले जानता था कि मानगढ़ की पहाड़ी पर तीन ओर से रास्ता है और एक दिशा में सैकड़ों फुट गहरी खाई है। योजना के तहत मगरी को घेर लिया जाता है और खाई वाला हिस्सा छोड़ दिया जाता है। उसके उपरांत स्टोकले के कहने पर आदिवासियों का नरसंहार किया जाता है। इस नरसंहार में लगभग पन्द्रह सौ आदिवासियों को मार दिया गया था तथा बहुत से घायल भी हुए थे। इतिहासकार पी.एल. गौतम लिखते हैं- “ब्रिटिश सेना ने मानगढ़ की पहाड़ी को चारों ओर से घेर लिया और गोलियों की बौछार कर दी जिससे घटनास्थल पर ही 1500 आदिवासी शहीद हो गये एवं हजारों घायल हुए।”¹⁰ लेकिन इतिहासकार पी. एल. गौतम मानगढ़ की पहाड़ी को चारों ओर से घेरकर नरसंहार की बात स्वीकार करते हैं। जबकि चौथी दिशा में गहरी खाई थी जिसमें अपनी जान बचाने के लिए गए आदिवासी गिरकर मर गए थे। ऐसा लगता है कि इतिहासकार इस घटना को गहराई से न जानकर सतही स्तर पर देखा है। लेकिन इसके साथ महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत भी करते हैं कि इस घटना में 1500 सौ आदिवासी मारे गए थे और बहुत से घायल भी हुए थे।

इस बात में किसी प्रकार का विवाद नहीं है कि मानगढ़ पहाड़ी पर अंग्रेजों द्वारा नरसंहार हुआ था। लेकिन उपन्यास में दी गई तिथि और ऐतिहासिक तिथि मेल नहीं खाती। क्योंकि हरिराम मीणा¹¹, रमेशचंद्र मीणा इस घटना को 17 नवम्बर 1913 की बताते हैं जबकि उपन्यासकार-“7 दिसम्बर 1908”¹² और शिवतोष दास इस घटना को 7 दिसम्बर 1908 का मानते हैं। इस सन्दर्भ में शिवतोष दास लिखते हैं-“माघ पूर्णिमा, 7 दिसम्बर, 1908। मानगढ़ की पहाड़ी वनवासी कलरव से गुंजित थी। गोविन्द गुरु धूनी प्रज्वलित कर रहे थे। अकस्मात् चारों ओर से गोलियों की बौछार शुरू हो गई।”¹³ रमेशचंद्र मीणा लिखते हैं-“रियासतों के साथ फिरंगी फौजें 17 नवंबर, 1913 को गुप्त रणनीति के तहत पहाड़ पर चढ़ती हैं और शांति से पंचायत कर रहे लोगों पर बिना सूचना के फायर कर देती हैं। घड़ी-भर में लाशों के ढेर लग जाते हैं।”¹⁴ इन तथ्यों से जो बात उभरती है। उससे स्पष्ट होता है कि यह अमानवीय नरसंहार का समय 17 नवम्बर 1913 था।

अंग्रेजी कूटनीति का शिकार बने गोविन्द गिरी

इस नरसंहार के बाद गोविन्द गिरी को पकड़कर अहमदाबाद सेंट्रल जेल की कोठरी में महीनों बंद रखा गया था। इसी बीच पूजा धीरा को सरकारी गवाह बनाकर युसूफ खां की हत्या का आरोप गोविन्द गुरु पर लगाकर उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई थी। शिवतोष दास लिखते हैं- “गोविन्द गुरु तथा उनकी पत्नी को गिरफ्तार करके अहमदाबाद केन्द्रीय कारागार भेज दिया गया। वहाँ ढाई महा तक उन्हें बिना सुनवाई के रखा गया और तरह-तरह से सताया गया ताकि वे अपना संगठन बन्द करके अंग्रेज राजभक्ति स्वीकारें, लेकिन गोविन्द गुरु टस से मस न हुए। अन्ततः उन पर गठरा के थानेदार की हत्या का आरोप लगाकर मुकदमा चलाया गया। असली अपराधी पूजा भील सरकारी गवाह बन गया, जिसने बयान दिया कि गोविन्द गुरु ने उसे गाँजा पिलाकर थानेदार की हत्या के लिए उकसाया था।”¹⁵ अंग्रेजी रणनीति के तहत गोविन्द गिरी को फँसाया गया था ताकि वह आदिवासियों को जागरूक न कर सकें।

इस उपन्यास की अपनी कुछ खूबियाँ हैं। इसमें गोविन्द गिरी का चरित्र ऐसे उभरा है जैसे यह उपन्यास न होकर उनकी जीवनी हो, क्योंकि उनके आरंभिक जीवन से लेकर अंतिम जीवन तक के

सफर को रचनाकार अपनी कलम से उकेरने में सफल हुआ है। चाहे यह उनका पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक पक्ष क्यों न हो। हरिराम मीणा गोविंद और गनी के दम्पती जीवन को उतनी खूबसूरती से नहीं उभार पाते जितनी क्षमता के साथ इन्होंने उभारा है। निराला की कविता 'राम की शक्ति पूजा' में जब राम निराश होने लगते हैं तो उस समय आकाश में बिजली चमकती है। उसमें उन्हें सीता की छवि के रूप में आशा का संचार नजर आता है उसी प्रकार जहाँ-जहाँ गोविन्द कमजोर पड़ते हैं, गनी बड़ी हिम्मत के साथ उन्हें आगे बढ़ने की ओर प्रेरित करती है। उन्हीं के साथ मिलकर जागृति के कार्य में सहयोग देती है। जब अंतिम समय में वे करागार में होते हैं उस समय वे कहते हैं कि गनी ये अमानवीय व्यवहार समाज के सम्मुख आना चाहिए। उनकी यह बात उनके जीवन में उसकी उपयोगिता को साबित करता है। इसी के साथ ही गोविंद गुरु और दयानंद सरस्वती के मध्य हुई बातचीत को सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से व्यक्त किया है।

भाषा के कारण इस उपन्यास की गारिमा और बढ़ गई है, क्योंकि भाषा की मधुरता के कारण ही वहाँ का क्षेत्रपन और रंगलोकपन आ पाया है। लेकिन कहीं-कहीं ऐसा लगता है रचनाकार शब्दों को लेकर सचेत नहीं है- "इन आदिवासियों और जनजातियों का जीवन बहुत रंग बिरंगा होता है -पहनावे में भी लोकसंस्कृति से भी।"¹⁶ "ये जन पढाई-लिखाई में शून्य, मारने-पीटने में आगे और जंगल में जीने वाले पिछड़े हुए समाज के शिरमोर हैं।"¹⁷ यहाँ पर लेखक आदिवासी और जनजाति शब्द को अलगाता है जबकि यह शब्द उनके लिए प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ उन्हें हिंसक के रूप दिखाया गया है। जबकि उनकी प्रवृत्ति इस उपन्यास में कहीं भी हिंसक नहीं नजर आती है।

जब हम हिन्दी में रचित आदिवासी जीवन केन्द्रित ऐतिहासिक उपन्यासों की पड़ताल करते हैं तो हमारे सम्मुख उपर्युक्त पांच ही उपन्यास आते हैं। यह विचारणीय मुद्दा है कि इन रचनाओं में भी आदिवासी द्वारा रचित एक उपन्यास 'धूणी तपे तीर' (हरिराम मीणा) ही हमारे पास है। क्या कारण है कि भारत की चारों दिशाओं में अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाले योद्धाओं के ऊपर अभी तक बहुत कम लिखा गया है। अगर यह कहाँ जाए कि आदिवासियों के संघर्षों को उपेक्षा का शिकार बनाया गया है। तो यह अतिशोक्ति न होगी। क्योंकि कल्पना का आधार दे-देकर रस के साथ आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास तो लिखे- पढ़े जा रहे हैं, लेकिन जब बात उनके इतिहास की आती है तो हमारे यहाँ के रचनाकारों को साँप सुंग जाता है। देश के चारों तरफ संघर्ष करने वाले योद्धाओं पर सिर्फ गिनी-चुनी रचनाएँ आ पाई हैं। उनमें भी झारखंड क्षेत्र पर तो रचनाएँ मिल जाती हैं। बाकि के संघर्ष हमारी आँखों से ओझल हैं। बरहाल प्राप्त रचनाओं पर बात की जाए तो कह सकते हैं कि राकेश कुमार सिंह काफी खोजबीन करके आदिवासियों के संघर्षों के ऊपर अपनी लेखनी चला रहे हैं। हरिराम मीणा और राजेन्द्र मोहन भटनागर ने एक-एक उपन्यास लिखकर भी राजस्थान में घटित महत्वपूर्ण संघर्षों की ओर सभी का ध्यान खींचा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- i. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2011, पृ. संख्या- 7
- ii. मीणा, रमेश चंद, राजस्थान के आदिवासी 'धूमाल', क्रांतिकारी आदिवासी, संपादक, मीणा, केदार प्रसाद, साहित्य उपक्रम, सं.-2012, पृ. संख्या- 83
- iii. गौतम,पी.एल., आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं-, पृ. संख्या-427
- iv. "मेला की तारीख 17 नवम्बर थी" मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम, सं.-2014, पृ. संख्या- 341
- v. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2011, पृ. संख्या- 190

- vi. दास, शिवतोष, स्वतन्त्रता सेनानी वीर आदिवासी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1994, पृ. संख्या-96
- vii. मीणा, रमेश चंद, राजस्थान के आदिवासी 'धूमाल', क्रांतिकारी आदिवासी, संपादक,मीणा, केदार प्रसाद, साहित्य उपक्रम, सं.-2012, पृ. संख्या- 80
- viii. दास, शिवतोष, स्वतन्त्रता सेनानी वीर आदिवासी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1994, पृ. संख्या-97
- ix. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2011, पृ. संख्या-11
- x. वही, पृ. संख्या- 12
- xi. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2011, पृ. संख्या-290
- xii. सिंह, राजेन्द्र प्रसाद, तिलका मांझी, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2011, पृ. संख्या- 75
- xiii. दास, शिवतोष, स्वतन्त्रता सेनानी वीर आदिवासी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1994, पृ. संख्या-28
- xiv. पंकज, अश्विनी कुमार, आदिवासी जनविद्रोह है भारत का पहला स्वतन्त्रता संग्राम, 1857 भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, संपादक, चौबे, देवेन्द्र, बट्टीनारायण, पटेल, हितेन्द्र, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, सं.-2008, पृ. संख्या- 276
- xv. सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़िया, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2012, पृ. संख्या- 302
- xvi. दास, शिवतोष, स्वतन्त्रता सेनानी वीर आदिवासी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1994, पृ. संख्या-28
- xvii. पंकज, अश्विनी कुमार, आदिवासी जनविद्रोह है भारत का पहला स्वतन्त्रता संग्राम, 1857 भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, संपादक, चौबे, देवेन्द्र, बट्टीनारायण, पटेल, हितेन्द्र, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, सं.-2008, पृ. संख्या- 276

भरत कुमार

शोधार्थी

गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय

सेक्टर-29

गांधीनगर

Copyright © 2012 - 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat